तुलसी
आधुनिक वातायनसे

डॉ० रमेश कुन्तल मेघ



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला ग्रन्थांक-२४२
सम्पादक एवं नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन



Lokodaya Series Title [illegible]

TULSI
ADHUNIK VATAYAN SE

([illegible])

Dr Ram [illegible] Kunt [illegible]

Bharatiya Jnanpith
Publication

First Edition 1967

Price Rs [illegible] 00

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय
९ अलीपुर पार्क प्लेस कलकत्ता २७

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग वाराणसी ५

विक्रय केन्द्र
३६२० ।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली ६

प्रथम संस्करण १९६७
मूल्य १२.००

सन्मति मुद्रणालय
वाराणसी-५

नागरिक, नागरक, संत, भक्त और कवि तुलसीदास—जिनका बचपनका नाम 'रामबोला' था—पर सात उपनिषदवाली हमारी इस गोष्ठीमें न तो काकभुशुण्डि और गरुड़, न याज्ञवल्क्य और भरद्वाज, न शिव और पार्वती और न ही नरहर्यानन्द और तुलसी मौजूद हैं। उनकी एक मिथकीय एवं आध्यात्मिक ऐतिहासिक दुनिया थी। हमारी इस गोष्ठीका आयोजन बीसवीं सदीके भारतके मंचपर हो रहा है, जहाँकी यथार्थता और स्वप्न दूसरे हैं। आज हम भारतसे उन सामन्तीय संस्कारोंके खतम करनेपर जुटे हैं, जो वर्णाश्रम धर्म और नारीकी दासताकी वजहसे ग्राम विकासको रोकते हैं, शहरोंमें बड़े-बड़े भारी उद्योगोंको कायम करनेपर जुटे हैं, जो समाजवादके लिए इस्पात, बिजली, जेट वायुयान, औद्योगिक माल पैदा करेंगे। आजके खल व्यक्ति नहीं, समूह और वर्ग हैं, आजके संत भी सामाजिक दार्शनिक हैं। किन्तु हमारे वर्तमान और इतिहासकी एक महान् परम्परा आये हुए है, जो एक निरन्तर जीवन्त प्रक्रिया है। तुलसीको आधुनिक गवाक्षसे देखने-सुनने-समझनेका मतलब है अपने भारतकी बहुसंख्यक जनताके परम्परागत आदर्शों तथा जीवन मूल्योंकी ठोस चुनौतियोंका अध्ययन। साहित्य और कलाओंको या तो समाजका दर्पण माना जाता रहा है, अथवा 'दीपक'। हमने वातायन या गवाक्षका प्रतीक लिया है, जहाँसे भारतके मध्ययुगकी विविधता साकार हो उठती है। हमारी आजकी गोष्ठीमें केवल आस्तिक पाठक और सनातन संस्कारोंवाले आलोचक ही नहीं, बल्कि राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, नृवंशशास्त्री, सौंदर्यशास्त्री, वैज्ञानिक, मनोविश्लेषक, मार्क्सवादी, कांग्रेसी, समाजवादी आदि भी शामिल हैं। अतः हम इस गोष्ठीको शुद्ध साहित्यिक धरातलसे उठाकर सम्पूर्ण संस्कृतिकी आधुनिकताके आधारपर कायम करेंगे और इन सभी सहभोक्ताओंको मिला-जुला नया दृष्टिपात झरोखे पारका निदर्शन करेंगे।

यह गोष्ठी मध्यकाल अध्ययनशास्त्र (मेडीवल स्टडीज) का विकास करनेकी दिशामें एक अगला कदम है। हिन्दीमें मध्यकाल अध्ययनका प्रथम गम्भीर चेष्टा आचार्य शुक्लने की, किन्तु वे उदार हिन्दू संस्कारोंसे ही साहित्य

थे। अब उन्होंने उधर हिन्दू-दृष्टिकोणसे इतिहासको देखा। आचार्य द्विवेदी प्रभृति हिन्दी के मध्यकालका साहित्यावलोकनको भूमिका तैयार और मध्यकालको साधनाओंको मानवतावादी व्याख्याएँ कीं। इसके बाद मध्यकालके निर्मित प्रयास रुक से गये। गुजरातीमें आधुनिक दृष्टिसे गम्भीर काम करनेवालोंमें एक जॉर्ज ग्रियर्सन, इन्दु इसलाम पा० हिन्दी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल डॉ० पी० आ० बारान्निकोव प्रभृति का नाम भी लिया जायगा। इन सबने विशेषतः मनोविज्ञान तुलना-अध्ययनमालाको ठोस रूपमें दी है। हमने इसी प्रगतिशील और गम्भीर परम्परामें प्रेरणा पाकर मध्यके विषय-सूत्रका गूँथा है।

मुगलकालीन भारतके मध्यकालके अध्ययनमें हम एक-सा पहलिकार बोधसे गुजरता पता है। पूरे मध्यकालका अध्ययन करनेके लिए अरबी तुर्की ईरानी इतिहासकारोंके ग्रन्थ मुगल सम्राटोंके संस्मरण आईने अकबरी चित्र कला संगीत स्थापत्य तथा अन्य कलाओं प्रशासन और अर्थतन्त्र सामाजिक जीवन और धार्मिक चेतना साहित्य और अभिलेखागारके अध्ययनको अपेक्षा है। इस समग्र पटमें हम मध्यकालिक इतिहासकार इनमेंसे सम्राटोंका दृष्टिकोण देते हैं तथा सन्त भक्त एवं सूफी आदि भारतीय लोक जीवनके स्वर। किन्तु सामाजिक यथार्थताका दावा नहीं देते थे। किन्तु अनजाने उन इतिहासोंको— जिसमें महान् सम्राटों और रजवाड़ोंके युद्ध प्रेम ईर्ष्या आदि का लेखा जोखा न होकर भोगा गया और आकांक्षित किया गया गम्भीर तथा दारुण सामाजिक दस्तावेज है— सन्त भक्त तथा सूफी पेश करते हैं। इनके दृष्टिकोण साम्प्रदायिक या साम्प्रदायिक थे किन्तु ये ही तत्कालीन भारतके वास्तविक सब इतिहासकार (हिस्टोरियोग्राफर) हैं जिन्होंने पुराणों और आख्यानोंका सहारा लेकर भी जन इतिहासकी नींव डाली है। साहित्यिक माध्यमसे लिये गये इस इतिहासमें राम भक्ति धारा कृष्ण भक्ति धारा निर्गुण भक्ति धारा सूफी साधना धारा आदि अपने दृष्टिकोणसे समाज तथा संस्कृति चेतना तथा कविता भाष्य किया है। हमने केवल तुलसीको ही आधार बनाया है। इसलिए हमारा मध्यकाल अध्ययन मध्यकालीन एवं अकबरी एवं (हिन्दू) संस्कृति एवं साहित्य रूप (काव्य) का एक धारामें एक कविपर केन्द्रित हो जाता है। इसलिए यह मध्यकाल-अध्ययनशास्त्रका प्रारम्भिक भूमिका ही कहा जायगा यद्यपि हमने व्यापकता और गहराईके आयामोंको उभारनेकी हर मुमकिन कोशिश की है।

मध्यकालीन धार्मिक साहित्यके अध्ययनमें अत्यन्त आधुनिक होनेपर हम बड़ी विशाल ऐतिहासिक परम्पराकी धाराके लिए पराये हो जाते हैं और अत्यन्त

पुनरुत्थानवादी होनेपर रूढ़ियों और ऐतिहासिक पतनके प्रति भी झूठे गौरवका विभ्रम फैलाने लगते हैं। इसके बीचमें चन्दनपर फिसल जानेका मुतवातिर अन्देशा क़ायम रहा है। हमने ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टिकोणकी सहायता लेकर इसका नया नयी दिशाओंमें पुन संस्कार तथा अन्तर रूपान्तर (मेटेमॉरफोसिस) किया है। मध्यकालीन साहित्य तथा संस्कृतिके जनपथमें तीन प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं मध्यकालीनीकरण ग्राम्यीकरण और मिथकीयकरण। इन तीन 'करणो' की बुनियादपर हम कुछ सही लोचन पा सकते हैं। मध्यकालीन साहित्यमें धार्मिक भाषाकी एक जटिल समस्या है क्योंकि वहाँ धार्मिक प्रतीकों और धार्मिक कर्मकाण्डके माध्यमसे स्वयंप्रकाश्य अनुभवोंका अवचयण हुआ है। मध्यकालीन सौन्दर्यबोध शास्त्रकी भी अपनी विशेषताएँ हैं जो काव्यशास्त्रीय परम्परासे थोड़ा पृथक और भिन्न भी है। मध्यकालीन साहित्यमें अभिव्यक्त पौराणिक चेतनाके आधारपर तत्कालीन ऐतिहासिक यथार्थकी संरचना करना भी एक दुरूह समस्या है और मध्यकालीन आध्यात्मिक चेतनाको तत्कालीन अनुभवगम्य यथार्थतासे जोड़ना भी एक अनबूझ पहेली है। हम इन विपरीता और अन्तर्विरोधोंका यथासम्भव सुलझानेकी चेष्टा करेंगे। इस प्रयासमें प्राप्त नये निष्कर्षों तथा अनुभवोंको प्रकट करनेके लिए हम परम्परागत शब्दावलीके बजाय नयी शब्दावली गढ़नेकी आवश्यकता सर्वाधिक महसूस हुई है। अत हम अनेक करण-प्रत्ययोंके द्वारा यह कार्य सिद्ध करेंगे।

सांस्कृतिक दृष्टिसे तुलसीकी सम्पूर्ण जीवनकी रचना और उसके आलोकमें उनके कृतित्वकी मीमांसा करना लाजिमी है। बहुधा हमारे मनमें जिस तुलसी की छाप डाली गयी है वह एक सन्त भक्तकी है तथा जिस ग्रन्थकी जादू छाया है वह 'मानस' है। तुलसी प्रधानतया सन्त हो सकते हैं किन्तु इसके साथ-साथ वे एक विमान, प्रामाण उपस्थित बनके एक मनुष्य थे। इसी तरह मानस में उनका पुनरुत्थानवादी अपने चरमोत्कर्षपर है। बादमें 'हनुमान बाहुक' और कवितावली तक आते आते वे वर्णाश्रम तथा अपनी आस्था विश्वासके सामने भी बड़ा सा प्रश्नचिह्न लगा देते हैं। यह प्रश्नचिह्न मानो उनका निर्भ्रान्तीकरण (डिस इल्यूजनमेण्ट) और भारतके भविष्यका इशारा भी है। हमें तुलसीके 'आर्केटाइपल' बिम्बको उनके समग्र व्यक्तित्व तथा विविध कृतित्वकी पृष्ठभूमिमें उभारकर साक्षात करना होगा।

सारे मुगलकालमें दो ही व्यक्ति व्यापक इतिहासके प्रतीक हैं अकबर और तुलसी। व्यापकता दूरदर्शिता, भारतके महत भविष्यके प्रति झिलमिलाते स्वप्नों का साकारीकरण विराट जनताके स्पन्दना और उनके यथार्थका जन जन लोक

भूमिका अदा करती है। दोनों का [illegible] था। इस प्रकार हम मध्यकालीन संस्कृति का पूरा सामाजिक परिवेश प्रतिबिंबित पाते हैं। इस दृष्टि से बौद्ध एवं सूफी [illegible] हिन्दू इतिहास और मुसलमान [illegible] सांस्कृतिक आधार [illegible]। इतिहास को तो महानायकों और महान् घटनाओं के [illegible] आधार पर लिखा जाता रहा है मगर [illegible] जनता और उसकी दैनिक [illegible] सामाजिक समस्याओं के बारे तथा उसकी [illegible] लिखा जा सकता है। तुलसीदास [illegible] इतिहासकार (आर्किटेक्ट [illegible]) में दूसरा [illegible] है। यदि उनमें [illegible] यथार्थता और [illegible] तो सामाजिक यथार्थता और [illegible] है। य मध्यकालीन [illegible] नहीं है। इस तरह तुलसी [illegible] संस्कृति एक दर्पण है [illegible] हैं और [illegible] होगा। आइए हम [illegible] तुलसी और उनके [illegible] क्या न करें।

■ ■

• विषय-सूत्र

हिन्दीकी नयी बौद्धिकतावादी
परम्पराको—

पहली गोष्ठी[1]

●

"गुप्त प्रगट इतिहास पुराना" अर्थात् तुलसीके युगमें पौराणिक अर्थात् मिथकीय काल (मिथक टाइम) और ऐतिहासिक काल (हिस्टॉरिकल टाइम) के कौन-से आयाम थे?

अपने बचपनमें रामलला नामधारी तुलसीदास भारतीय मध्यकालके द्रष्टा माने जा सकते हैं। भारतका मध्यकाल बहुत लम्बा है जहाँ अनेक स्थानों और समयोंमें काफी विभिन्न प्रकारों एवं स्तरोंकी सभ्यताओंका समावेश है। यह हिन्दू-काल तथा मुस्लिम कालमें बाँटा जा सकता है। हिन्दू कालमें भी बाहरी जातियोंके आक्रमणादिके संकटोंके बाद गुप्तोंका साम्राज्य पल्लवित हुआ था और कालिदास जैसे कविने 'रघुवंश' रचा। मुस्लिम कालमें भी मंगोलों तुर्कों अथवा आन्तरिक आक्रमणादिके संकटोंके बाद मुगल कालमें अकबरका साम्राज्य पल्लवित हुआ था और तुलसी-जैसे कविने 'रामचरित मानस' रचा। रघुवंशके पहले ऋषि वाल्मीकिकी रचना पूर्ण हुई थी तथा मानसके पहले किसी गुमनाम मुनिने 'अध्यात्म रामायण' रची थी। इस तरह भारतीय मध्यकालमें रामवृत्त एक नयी सामाजिक चुनौतीका पेश रहा है। तुलसीने मुस्लिम मध्यकालमें हिन्दू मध्यकालके स्वप्नोंको प्रस्तुत किया है तथा हिन्दू मध्यकालके आदर्शोंको मुस्लिम मध्यकालके हिन्दू जनजीवनकी तुलनामें परखा भी है। इसके अलावा तुलसीने कविसे अधिक एक सन्त एवं भक्तकी दृष्टिसे काव्य रचना की है। उन्होंने अकबर जहाँगीर कालमें जीवित रहते हुए एक मिथक कथाको

---

१ पूरी किताबमें श्री सद्गुरुशरण अवस्थी द्वारा सम्पादित 'रामलला नहछू'।

(अ) (तुलसी के चार ग्रन्थ भाग २) को छोड़कर तुलसीकी जिन अन्य पुस्तकोंके सन्दर्भ दिये गये हैं वे गीताप्रेस गोरखपुरके प्रकाशन हैं।

(ब) 'मानस'में सन्दर्भोंका क्रम इस प्रकार है — २।१५२।५ ६ — यहाँ पहली संख्या काण्डकी, दूसरी दोहेकी, एवं बादकी संख्याएँ पूर्ववर्ती दो०के आगेकी चौपाइयोंका निर्देश करती हैं।

पहली गोष्ठी

•

"गुप्त प्रगट इतिहास पुराना" अर्थात् तुलसीके युगमें पौराणिक अर्थात् मिथकीय काल (मिथक टाइम) और ऐतिहासिक काल (हिस्टॉरिकल टाइम) के कौन-से आयाम थे।

अपने बचपनमें 'रामबोला' नामधारी तुलसीदास भारतीय मध्यकालके दान्ते माने जा सकते हैं। भारतका मध्यकाल बहुत लम्बा है जहाँ अनेक स्थानों और समयोंमें काफी विभिन्न प्रकारों एवं स्तरोंकी सभ्यताओंकी सम्भावना है। यह हिन्दू-काल तथा मुस्लिम-कालमें बाँटा जा सकता है। हिन्दू-कालमें भी बाहरी जातियोंके आक्रमणादिके संकटोंके बाद गुप्तोंका साम्राज्य पल्लवित हुआ था और कालिदास जैसे कविने 'रघुवंश' रचा। मुस्लिम-कालमें भी मंगोल तुर्क अथवा अफगान आक्रमणादिके संकटोंके बाद मुगल कालमें अकबरका साम्राज्य पल्लवित हुआ था और तुलसी-जैसे कविने 'रामचरितमानस' रचा। 'रघुवंश'के पहले यद्यपि वाल्मीकिकी रचना पूर्ण हुई थी तथा 'मानस'के पहले किसी गुमनाम मुनिने 'अध्यात्म रामायण' रची थी। इस तरह भारतीय मध्यकालमें रामवृत्त एक नया सामाजिक चुनौतीका पुंज रहा है। तुलसीने मुस्लिम मध्यकालमें हिन्दू मध्यकालके स्वप्नोंको प्रस्तुत किया है तथा हिन्दू मध्यकालके आदर्शोंको मुस्लिम मध्यकालके हिन्दू जनजीवनकी तुलनामें परखा भी है। इसके अलावा तुलसीने कविसे अधिक एक सन्त एवं भक्तकी दृष्टिसे काव्य रचना की है। उन्होंने अकबर जहाँगीर-कालमें जीवित रहते हुए एक मिथक-कथाको

---

१ पूना विद्यापीठके श्री सद्गुरुशरण अवस्थी द्वारा सम्पादित 'रामलला नहछू'।
(अ) ('तुलसी के चार दल भाग २') को छोड़कर तुलसीकी जिन अन्य पुस्तकोंसे सन्दर्भ लिये गये हैं वे गीताप्रेस गोरखपुरके प्रकाशन हैं।
(ब) 'मानस'में सन्दर्भोंका क्रम इस प्रकार है — १।२४।२।४ ६ — यहाँ पहली संख्या काण्डका, दूसरी दोहेका, एवं बादकी संख्याएँ पूर्ववर्ती दोहेके बादकी चौपाइयोंका निर्देश करती हैं।

वादी तथा विध्वंसवादी दृष्टियाँसे काफी लिखा जा चुका है। इसलिए इसे आध्यात्मिक और अलौकिक आस्थासे अलग करके समाजशास्त्रीय तथा सौन्दर्यशास्त्रीय धरातलपर अंकित करनेपर हमें कई जटिल गाठों और ज्वलन्त चुनौतियोंका सामना करना पड़ेगा। हम आचार्य शुक्लकी लोकमंगलकी परम्पराको द्वन्द्वात्मक समाजदर्शनकी दिशा देनेकी कोशिश करेंगे।

विश्व संस्कृतिकी रचना अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी प्रयोजनोंके लिए होती रही है। यह रचना उत्पादन और सृजनद्वारा हुई है। हम शुरूमें ही यह मंजूर करते हैं कि मानव इतिहासकी गतिमें कोई भी समाज—प्राकृतिक एवं मानवीय सम्बन्धोंसे कट नहीं सकता और कोई भी चिंतन समाजका परोक्ष या प्रत्यक्ष आकलन किये बिना प्रकट हो नहीं सकता। हम यह भी स्वीकार करना होगा कि राष्ट्रीय इतिहासकी रचनामें सत्य निष्पक्ष नहीं रह पाता और प्रत्येक इतिहास अपनी भौगोलिक सीमाओंके बावजूद सांगोपांग मानव इतिहास नहीं हो पाता। पुनश्च हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि भौगोलिक एवं राष्ट्रीय इतिहासमें भी मानवतावादी या अध्यात्मवादी या बौद्धिकतावादी विश्व दृष्टिकोण भी निहित होता है। किन्तु क्या विश्व संस्कृतियोंके मध्यकालमें कुछ ऐसे सार्वभौम तत्त्व भी हैं जिन्हें प्रत्येक राष्ट्र अपनी विशिष्ट सामाजिक अवस्थामें ऐतिहासिक निरपेक्षताके मुताबिक धारण करता आ रहा है? व्यापक रूपसे कुछ ऐसे तत्त्व हैं। फिलहाल हम अपने निरूपणको सामाजिक सम्बन्धों और मध्यकालीन आदर्शों तक सीमित रखेंगे।

पूरे भारतीय मध्यकालके समाज संस्कृति कला धर्म दर्शन कानून आदिकी मूलाधार भूमि व्यवस्था रही है। सामन्तों और सूबेदारोंने इस व्यवस्थामें राजनैतिक तथा आर्थिक शक्तियाँ अपने अधिकारमें रखी हैं और कृषकोंको हमेशा शोषणका शिकार रहना पड़ा है। यह सामन्तीय व्यवस्था कुछ ऐसी थी जिसमें दुर्बल शक्तिमानोंकी सेवा करते थे तथा यह समझते थे कि वह दुर्बलोंकी रक्षा करे। इन सबके ऊपर सम्राट था जो कृपानिधान शरणागतवत्सल और समदर्शी पिता आदि होता था। इस सामन्ती व्यवस्थामें संघ और पंचायत, गण और साम्राज्य सामन्त और सूबेदार कृषक और गुलाम राजसभाओंके कवि और लोककवि किसानों और व्यापार राजसभाओंके प्रेम तथा राजसभाओंका साहित्य और लोकजीवनके प्रेम तथा लोकसभाओंका साहित्य इत्यादिकी दिशाएं मिलती हैं। मुस्लिम मध्यकालकी कुछ नयी विशेषताएं भी मिलती हैं जैसे लोकभाषाओंका विकास व्यापारियों और कारीगरोंके वर्गोंका अभ्युदय दक्षिणसे उभरकर उत्तरमें फैलते हुए भक्ति आन्दोलनका जनजीवनमें प्रवेश

विरहित अतीतमें प्रक्षेपित करता है तब वे ऐतिहासिक आदर्शोंकी भूमिका बन जाता है। मध्यकालीन समाजके मनुष्यके लिए संस्कृतिकी सम्पूर्णताको प्राप्त करना सम्भव नहीं था और न ही सामाजिक परिस्थितियोंके आधारपर उस संस्कृतिका क्रमिक विकास होता था इसलिए एक काल्पनिक अतीत ही पहला युग हुआ, और पहला युग स्वर्ण युग हो गया। इन्हीं कारणोंसे ऐतिहासिक आदर्श 'विशुद्ध खुशहाली' (हपीनेस) के रूपमें प्रतिष्ठित हुए। इनमें मध्यकालीन अन्तर्विरोधों तथा सामाजिक अन्तर्विरोधोंके कारण पहले तो ये भौतिक इहलौकिक खुशहालीके आदर्श युगों-युगों पहलेके और दूर सुदूर लोकोंके आदर्श बन बादमें ये मात्र धारणा हो गये जिनकी प्राप्तिके लिए जीवनके बन्धनोंसे छुटकारा पाना (मोक्ष) और अमरत्व पाना (स्वर्ग प्राप्ति) लाजिमी हो गया। साराशमें, इहलौकिक विपन्नता पारलौकिक खुशहालीमें भटक गया। इसीके साथ रहस्य, पलायन, रूढ़ि कर्मकाण्ड आदिकी मिथ्या चेतनाएं भी उठ पड़ीं।

मध्यकालीन समाजकी व्यापक निराशापूर्ण अवस्थाओंमें यह विशुद्ध खुशहाली पारलौकिक खुशहालीमें बदल गया। इसके लिए सम्पूर्ण त्याग तथा सम्पूर्ण ज्ञान ही धारणात्मक आदर्श हो गये। साराशमें समाजकी दरिद्रताको ही आदर्श रूपमें प्रतिष्ठित कर दिया गया। सभी प्रकारके लौकिक बन्धनोंसे मुक्ति तथा सभी प्रकारकी कामनियोंसे विराग आदि इसी दरिद्रताके आदर्शीकरणके आध्यात्मिक पहलू हैं। त्याग और दानका पालन एक नितान्त कठिन किन्तु सर्वोच्च आदर्श हो गया जिसके प्रतीक सन्त मुनि भक्त ऋषि आदिके चरित्र हुए। इस तरह वास्तविक खुशहालीका आदर्श सन्ताप तथा त्यागके आदर्शोंमें आच्छादित हो गया। स्त्री परित्यागकी असामाजिक परिणति गृहस्थी और नारीके निषेधमें भी हुई।

दूसरी दिशा चरवाही संस्कृतिकी रही। यह बहुत कुछ व्यक्तिगत भी थी। इस आदर्शमें सहज सरलता और सत्यको चरम माना गया। इसमें सुख (प्लजर) तथा प्रकृति (नेचर) के लिए संस्कृतिकी सीमाओं लोकमर्यादाओं आदिका परित्याग कर दिया जाता है। इस संस्कृतिमें क्रीड़ा तथा लीलाकी प्रधानता है। इसमें प्रेम और भोग शृंगार, वनियों और वन विथियों आदि स्वर्गिक सुखोपभोगका स्थान रखते हैं।

तीसरी दिशा शूरतायुक्त आदर्शकी है। जब मध्यकालमें भी धीरे धीरे आदर्शात्मक अतीतके साथ साथ वास्तविक अतीतकी स्मृतियां जुड़ने लगती हैं तब आदर्शोंका बोझ अधिक मूर्त और बोधगम्य होना पड़ता है। इस तरह सामान्य मानवीय आदर्शोंके साथ-साथ विशिष्ट ऐतिहासिक आदर्श भी जुड़ जाते

मुसलमानों और इस्लामका गहरा सांस्कृतिक मुठभेड़ हुई । हिन्दू शासन दुर्बल था शासकोंआर सांस्कृतिक अस्तित्व प्राप्त किया था और मध्यकालमें इतना व्यापक अन्तर्राष्ट्रीयकरण हुआ था । उस समय इस्लाम राजनैतिक शक्ति था और मुस्लिम युवक तरह वह जनजीवनमें आन्तरिक रूपसे नहीं प्रवाहित हो रहा था । इसलिए मुस्लिम मध्यकाल मुख्य रूपसे अधीन व्यापक प्रजाओंपर घटना तथा सामाजिक अन्तरावलम्बनोंका प्रसार करता है । ऐसा मध्यम इस तुलसीका पा जाते हैं । इस कालमें नायकों और सम्पर्कोंका एक रूप बड़े गहरे पाठ मन्दिरों मठों तथा रामचरितम कायम हो गया था जो इतनाही बड़ा विराट था । अतः मुस्लिम मध्यकालमें नायकोंकी परम्पराका प्रसार स्वतन्त्र रूपसे न होकर आन्तरिक रूपसे हुआ—भागवत धर्मके साथ अर्थ—वह सारा हुआ । जिस तरह प्राचीन महर्षि मनि गण आदि साहित्य रचते थे उसी तरह कालिदास भवभूति भारवि माघ हर्ष आदि कवियोंने रचा । उसी तरह मुस्लिम मध्यकालमें पण्डित सन्त भक्त आदि साहित्य रचते थे, सन्त कविताके कवियोंका सबेरा गया । इस तरह भारतमें मध्यकालमें सांस्कृतिक सहृदयता पर दो बार पर्याप्त एवं अपार ऐतिहासिक विघटनका असर हुआ । इस घटन कालमें ऐतिहासिक रचनाओंमें पहले हम रामकथाको लेते हैं जिसमें परिस्थितियोंका आख्यान कहूँगा या मैं रामवृत्त लिया जिसमें गुणात्मकताका आख्यान करेगा और तत्पर कृष्णवृत्त लिया जिसमें पुराणात्मकताका आख्यान करेगा । ये वृत्त क्रमशः पौराणिक घटनाओं ऐतिहासिक वास्तविकताओं और मध्य रचे हैं । गीत गामय रामायणका सृजन हुआ है तथा गीतगोविन्दमें महाकाव्यों । यद्यपि राम कृष्ण सुवर और चरितनायक अर्थात् पुरुषोत्तम प्राप्त हुए हैं । राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं कृष्ण लीला पुरुषोत्तम । क्या ?

ये तीन वृत्त मध्यकालीन आन्तरिक सार्वभौम वृत्त हैं जो भारतके आरम्भिक मुस्लिम मध्यकालमें एक साथ घुल मिल गये अर्थात् शक्ति शील और सौन्दर्य का मिश्र कायम हो गया ।

सम्भवतः आरम्भिक कालमें ऐतिहासिक धारणाएँ मिथकीयताके अतिकल्पनाओं (समाज) की निर्मितियोंपर आधारित होती हैं जिसमें इतिहास की तथ्यात्मकताका अभाव होता है । वे ऐतिहासिक आस्थाओं का प्रधानतावाली आस्थापूर्ण अतीत बन जाता है । अतः उनमें इतिहास बोध या वास्तविकताके बजाय पौराणिक बोध या आदर्श जीवन प्रधान हो जाया करता है । इस जीवनमें ऐतिहासिक आदर्श मिथकीय होते हैं एवं अतीतकी सम्पूर्णताकी एक धाम तलवार खिंच सी जाती है । जब मनुष्य सर्वोत्कृष्टता (एक्सिलेंस) की धारणाओंका काल

विरहित अतीतमें प्रक्षपित करता है तब वे एतिहासिक आदर्शोंकी भूमिका बन जाता है। मध्यकालीन समाजके मनुष्यके लिए संस्कृतिकी सम्पूर्णताको प्राप्त करना सम्भव नहीं था और न ही सामाजिक परिस्थितियोंके आधारपर उस संस्कृतिका क्रमिक विकास नाल था इसलिए एक आत्मपूर्ण अतीत ही पहला युग हुआ, और पहला युग स्वर्ण युग हो गया। इन्हीं कारणोंसे एतिहासिक आदर्श 'विशुद्ध खुशहाली (हपीनेस) के रूपमें प्रतिष्ठित हुए। लेकिन मध्यकालीन अन्तर्विरोधों तथा सामाजिक अन्धकारके कारण पहले तो ये भौतिक इहलौकिक खुशहालीके आदर्श युगों युगों पहलेके और दूर सुदूर लोकोंके आदर्श बन बादमें ये मात्र धारणा हो गये जिनकी प्राप्तिके लिए जीवनके बन्धनोंसे छुटकारा पाना (मोक्ष) और अमरत्व पाना (स्वर्ग प्राप्ति) लाजिमी हो गया। सारांशमें, इहलौकिक विषमता पारलौकिक खुशहालीमें भटक गयी। इसीके साथ रहस्य, पलायन, भक्ति, कर्मकाण्ड आदिकी मिथ्या चेतनाएं भी उठ पड़ी।

मध्यकालीन समाजकी व्यापक निराशापूर्ण जन दशाओंमें यह विशुद्ध खुशहाली पारलौकिक खुशहालीमें बदल गयी। इसके लिए सम्पूर्ण त्याग तथा सम्पूर्ण दान ही धारणात्मक आदर्श हो गये। सारांशमें समाजकी दरिद्रताको ही आदर्श रूपमें प्रतिष्ठित कर दिया गया। सभी प्रकारके लौकिक बन्धनोंसे मुक्ति तथा सभी प्रकारकी आसक्तियोंसे विराग आदि इसी दरिद्रताके आदर्शीकरणके आध्यात्मिक पहलू हैं। त्याग और दानका पालन एक नितान्त कठिन किन्तु सर्वोच्च आदर्श हो गया जिसके प्रतीक संत मुनि भक्त ऋषि आदिके चरित्र हुए। इस तरह वास्तविक खुशहालीका आदर्श संताप तथा त्यागके आदर्शोंमें आच्छादित हो गया। इसी परित्यागकी असामाजिक परिणति गृहस्थी और नारीके निषेधमें भी हुई।

दूसरी धारा चरवाहोंकी संस्कृतिकी रही। यह बहुत कुछ व्यक्तिगत भी थी। इस आदर्शमें सहज सरलता और सत्यको परम माना गया। इसमें सुख (प्लेजर) तथा प्रकृति (नेचर) के लिए संस्कृतिकी सामाजिक लोकमर्यादाओं आदिका परित्याग कर दिया जाता है। इस संस्कृतिमें क्रीड़ा तथा लीलाकी प्रधानता है। इसमें प्रेम और भोग शृंगार बगिया और वन विहार आदि स्वर्गिक सुखोपभोगको लक्ष्य रखते हैं।

तीसरी धारा शूरनायकोंके आदर्शकी है। जब मध्यकालमें भी शनैः शनैः आदर्शात्मक अतीतके साथ साथ वास्तविक अतीतकी स्मृतियां जुड़ने लगती हैं तब आदर्शोंको योनि अधिक मूर्त और बोधगम्य होना पड़ता है। इस तरह सामान्य मानवीय आदर्शोंके साथ-साथ विशिष्ट एतिहासिक आदर्श भी जुड़ जाते

है। अन्यत्र नरकासुर निबन्धमें आत्मिक सर्वोपरि ऐतिहासिक सामग्री पर वास्तविक जीवनके आधार हुआ है। नायक मनुष्यकी सम्पूर्णता (अभीतककी सम्पूर्णताकी अवस्था) को धारण करता है। वह जगत् और मनुष्यकी सेवा तथा रक्षाके लिए उत्सुक होता है। वह नारियों तथा गुरुजनोंके प्रति भक्ति और शरणागतोंकी रक्षा या धर्म विजयका अधिक अनुरागी होता है। शत्रुका पराभव भी होता है। वह अन्त तक आत्माकी प्राप्तिके लिए यत्न करता है और प्रायः बहुधा सुख-सुविधाओंका परित्याग कर जाते हैं। कभी-कभी तो वह जगत्का भी परित्याग कर देता है। अब वह आत्मत्यागी होता है। कई बार इस आत्मत्यागके मूलमें प्रणयका कोई गौरवमय आदर्श भी होता है (जैसे जायसीकी पद्मावती रानीका वातानुभाव) और प्रेमकी किसी प्रतिद्वन्द्विता (स्वयंवर अपहरण करना आदि) में इसका उद्गम भी होता है। नायक बिना गौरव करतबका प्रतिपादन करनेका आराध्यदेव भी जानकी बाजी लगा सकता है। इस प्रकार नरनायकका आदर्श ही राजाओं के जीवन प्रणय गौरवकी अभिव्यञ्जना तथा ऐतिहासिक नायकोंके अन्त आदि प्रदान करते हैं। कीर्ति सम्मान और प्रतिशोध और इनसे सम्बद्ध भावना एवं यश ही गौरवका चरम सत्य है। नरनायकमें परित्याग और सुखोपभोग दोनोंका संयोग होता है। इन कारणोंसे मध्यकालमें बहुधा नरवीर ही राष्ट्रीय आदर्शों और ऐतिहासिक विम्बको धारण करते हैं। लोक-सत्कर्म जातीयकरण की प्रवृत्तिका चरमोत्कर्ष होता है। इस चरणमें आकर देवनायकोंकी सृष्टि हो जाती है तथा पुराणनायकोंका जन्म होता है।

भारतीय मध्यकालमें भक्तिसाहित्यमें देवता ही चरितनायक तथा काव्यनायक हो गये हैं। इसलिए देवताओंकी आध्यात्मिकता और चरितनायकोंकी आदर्श कथाका अनूठा संयोग हुआ है। अवतारवाद मध्यकालीन साहित्यकी महत्तम उपलब्धि है (इसका विवेचन यथास्थान होगा) भक्तिसाहित्य प्रधान मध्यकालीन चरणमें रामवृत्त और कृष्णवृत्त अवतारवादी प्रभामण्डलसे पूर्णतः आलोकित हो उठे। ये वृत्त क्रमशः प्रसार और स्थिति, साधना और सिद्धि, संघर्ष और उपभोग, केन्द्रापसारी शक्ति (सेण्ट्रीफ्यूगल फोर्स) और केन्द्राभिसारी शक्ति (सेण्ट्रीपेटल फोर्स), वैयक्तिकता और सामष्टिकताके संकेतक हैं। जब जब समाज या कवि अधिक बहिर्मुख रहा है तब तब संस्कृत और भाषा-काव्यमें रामवृत्त तथा जब जब वे अधिक अन्तर्मुखी रहे हैं तब-तब कृष्णवृत्तका प्रसुमन हुआ है। जयदेवमें इन दोनों वृत्तोंकी संधि हुई है किन्तु उनकी वृत्ति शृंगार भोगवाली ही रही है। उन्होंने प्रसन्नराघव एवं गीतगोविन्द दोनों लिखे।

इन वृत्तोंकी विशेष दिशाओंका एक प्रमाण यह भी है कि दक्षिणपूर्व एशिया—सुमात्रा कम्बोज चम्पा, बाली जावा, स्याम आदि—में उस समय भारतीयोंको कर्णकी अपेक्षा दिग्विजयी रामने और उनके साथ शिव एवं बुद्धने सामाजिक दर्पण प्रदान किया। संघर्षमें सत्यके विजयी राम व्यवस्थाके प्रदाता मंगल प्रतीक शिव, तथा दिग्विजयके बाद शान्ति एवं करुणा एवं मैत्रीके प्रसारक बुद्धने मिलकर समाज-दर्शन प्रस्तुत किया। वहाँकी सामाजिक दशाओंमें राम बुद्ध शिवका मित्रत्व कायम हुआ। आश्चर्य यही है कि उत्तर भारतमें कर्ण उसी प्रकार भुलाये गये हैं जिस प्रकार भारतवर्षमें बुद्ध। इसमें क्या आश्चर्य है कि अकबर जहाँगीर कालमें तुलसीने राम और शिव (वीरता और मंगल) का समन्वय किया। वीरताका आदर्श क्षत्रियोंके लिए तथा संन्यास प्रधान कल्याण (शिवत्व) का आदर्श ब्राह्मणोंके लिए प्रस्तुत हुआ। अतएव तुलसीने एक अलिखे इतिहासकी सांस्कृतिक आवश्यकताको कई सदियों बाद जोड़ा है। कर्ण और शिव दोनों ही नृत्य तथा भोगके देवता हैं। पहला नन्दनागर है दूसरा नटराज। दोनोंके साथ योग भी जुड़ा है। कथाओंमें कर्णका योगी एवं भोगी रूप और शिवका योगी तथा सन्तोषी रूप उभरा है। तुलसीने—जिन्हें न भोग मिला न प्रेम न योग जो कर्मयोगकी ही साधना करते रहे तथा एक भद्दे समाजमें यन्त्रणाएँ सहते रहे—रामको मर्यादा पुरुषोत्तम समाज-संस्थापक सम्मिलित कुटुम्बको टूटनेसे बचानेवाले, एक पत्नी-व्रत पतिके रूपमें उभारा है। किन्तु सामन्तयुगीन विलासी संस्कृतिकी कुलीनता तुलसीके अनुकूल नहीं थी। सर्वेक्षण करनेपर पता लगता है कि रामानुजाचार्यकी चौदहवीं पीढ़ीके शिष्य राघवानन्द थे। उनके चेले रामानन्द थे। ये दोनों वैरागी थे तथा निर्गुण सगुण मार्गके सन्निस्थलपर खड़े थे। इसीलिए रामानन्दके शिष्योंमें एक ओर कबीर दादू आदि हुए तो दूसरी ओर नरहर्यानन्द भी। कहा जाता है कि तुलसी नरहर्यानन्दके चेले हैं। इस तरह तुलसीमें भी दार्शनिक अन्तर्विरोधोंका पुंज समाविष्ट हुआ। वे भी संन्यासियोंकी तरह घुमन्तू हैं। उनमें परिवारको नकारनेकी प्रवृत्ति है। उनमें शंकरका अद्वैतवाद भी है तो रामानुजाचार्यका विशिष्टाद्वैतवाद भी। वे शैवोंकी भी सहायता माँगते हैं। इसीलिए तुलसीमें दर्शनकी कोई तेज नुकीली धार नहीं है जिस तरह कि पुष्टिमार्गी कवियोंमें है। कबीरके निर्गुण राम तथा तुलसीके दाशरथि राम दोनों एक ही आचार्य परम्परासे प्रस्फुटित हैं। लेकिन इससे अधिक आश्चर्य (समाजशास्त्रीय परिस्थितियोंकी दृष्टिसे नहीं) क्या होगा कि बादमें रामभक्ति परम्परापर भी शृंगारिकता हावी हो गयी। इसका एक कल्पनात्मक कारण यह भी हो सकता है कि सूरने समाजके घर्मोंको नहीं छुआ और तुलसीने

व्यक्तिके रचनात्मक योगको नहीं मिला। [illegible] गुणोंका [illegible] परिवार कर दिया। इसका दूसरा कारण [illegible] स्थिति भी है। [illegible] भी नियतीय [illegible] निश्चय [illegible] है और दूसरा [illegible] का दूसरा [illegible] उसकी [illegible] करती है। [illegible] मध्यकालीन [illegible] और [illegible] मीय कथा तथा आध्यात्मिक [illegible] है [illegible] रचना [illegible] है। तुलसीके [illegible] धन्यवता विरोधी [illegible] है। [illegible] तुलसी [illegible] ग्राम (गाँव) तथा समाज [illegible] परब्रह्म। [illegible] नियतिवादी [illegible] अनुसार [illegible] पद्धति [illegible] रही है कि उस [illegible] कथा और उसमें [illegible] दानमय [illegible] परम्परा [illegible] किया [illegible] तुलना किया जाता है। इस [illegible] और [illegible] बात (नियत दान) का समन्वय पाते हैं। [illegible] रहस्यपूर्ण जीवात्मा [illegible] है—[illegible] सिद्धान्त [illegible] आत्मा [illegible] सिद्धान्त [illegible] आदि।

इस [illegible] मध्यकालीन [illegible] धर्म [illegible] एवं [illegible] सामाजिक [illegible] कर सकते हैं। इस सयोगमें [illegible] रागात्मक-वृत्त [illegible] जा सकता [illegible] आध्यात्मिक तथा पौराणिक [illegible] (यद्यपि [illegible] अर्थात् [illegible] कथा [illegible] भी [illegible] है)। सामाजिक [illegible] समान्तर और [illegible] सक्रिय रहती है [illegible] है [illegible] और अभिसार करने वाली दूसरी है [illegible] अभिसार करना अर्थात् [illegible]। मध्यकालमें समाजका केन्द्र [illegible] समाज [illegible] और न ही व्यक्ति [illegible] है। मध्यकालमें समाजकी लघुतम इकाई एक परिवार और [illegible] सम्मिलित परिवार [illegible] है तथा बृहत्तम इकाई ग्राम [illegible] है। उस समय राष्ट्र और [illegible] भाव एवं [illegible] नहीं होता था [illegible] अधिक जाति और वर्ण गोत्र और [illegible] भाव ही जाग सकता था। [illegible] जनजीवनकी [illegible] सामन्तीय व्यवस्थाकी आर्थिक सामाजिक राजनैतिक इकाई एक गाँव होता थी (सम्मिलित सामन्तवादमें तीर्थ और नगर भी)। यह ग्राम [illegible] इकाई प्रशासनकी भी इकाई थी। इसमें तीन विशेषताएँ थीं [illegible] पंचायत वर्णव्यवस्था और परिवार। पंचायत सामन्तके माध्यमसे सम्राटके शासनको लागू करती थी तथा भूमि व्यवस्था

करोंका नियमन करती थी। वर्णव्यवस्था मानो सामाजिक सम्बन्धोंका लघुरूप (मिनिएचर) होती थी। परिवार छोटी बस्तियों और सम्बन्धोंकी धुरी था। पंचायतें सर्वसम्मतिके भावपर, वर्णाश्रम व्यवस्था लोकमर्यादा तथा वेद मर्यादापर, और परिवार नाना प्रकारके मधुर सम्बन्ध वात्सल्य आदि भावोंपर आश्रित थे। मध्यकालीन संस्कृति — ज्ञान, धर्मशास्त्र, कला और साहित्य नाना भाँतिसे इन्हीं तीन क्षेत्रोंके आत्ममूलक और यथार्थमूलक — रामराज्य तथा बैकुण्ठमूलक — और वर्णिकार तथा नरमूलक रूपायन करते रहे हैं। परिवारसे ग्रामकी ओर प्रसारित होनेवाली सामाजिक शक्ति ही केन्द्रापसारी है तथा परिवारमें वैयक्तिक सम्बन्धों की ओर अभिसार करनेवाली सामाजिक शक्ति ही केन्द्राभिसारी है। केन्द्रापसारी शक्तिका क्षेत्र पंचायत और वर्णाश्रम व्यवस्था है तथा केन्द्राभिसारी शक्तिका क्षेत्र परिवार और उसके सदस्य — जैसे पति पत्नी, पिता पुत्र, भाई बहिन, सास बहू, सखी सखा, माता-पुत्र, प्रिया प्रिय इत्यादि।

ग्राम तथा परिवारको इस युगमें जबरदस्त चुनौतियाँ मिलीं। एक ओर नाथ सिद्ध (जिनकी परिधिमें लकुलीश, शैव, कौल, भैरव, कापालिक आदि भी शामिल हैं) ने वर्णमर्यादा तथा साधनाको हठ बनाया। उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था तथा परिवार व्यवस्था दोनोंपर कसकर चोटें कीं। परिवारकी स्त्रीको कलंकित करके उन्होंने यौन सम्बन्धोंमें उच्छृंखलता लानी और रागात्मक वृत्तिके कोमल तन्तु तोड़कर सौन्दर्य समाप्तप्राय कर दिया तथा प्रेमके उदात्तीकरणकी कोई राह नहीं छोड़ी। उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्थाका खण्डन करके सामाजिक अनुशासन ध्वस्त कर दिया। वे स्वयंको जनसामान्यसे अलग समझते थे और जनता की बोधगम्य भाषामें बातें नहीं करते थे। उनकी भूमिका ध्वंसात्मक रही। वे पंचायत, वर्ण तथा परिवारके स्थानपर कोई विकल्प न दे पाये। किन्तु उनसे एक शक्ति पैदा भी हुई — उन्होंने बादके निर्गुण साहित्यको बहुत अधिक प्रभावित किया और समाजकी रूढ़ियों और बाह्याडम्बरोंमें उलझनेका डटकर विरोध किया। दूसरी चुनौती इस्लामकी थी। दसवीं शतीमें मुसलमान अपनी नयी संस्कृति नया धर्म, नयी जीवन पद्धति लेकर आये और उन्होंने एक क्रान्ति उपस्थित कर दी। इसमें तो उन्होंने भारतकी सामन्तीय व्यवस्थाका ढाँचा भी ग्रहण किया था लेकिन कालान्तरमें वे भी सूबेदार, नायब, सामन्त और बड़े-बड़े जमींदार हो गये। उनकी चुनौती वर्णाश्रम-व्यवस्थाको थी। सामाजिक समन्वयात्मकतावाली दो संस्कृतियोंका अन्तरावलम्बन शुरू करा दिया। कबीर और जायसीने क्रमशः निर्गुण मार्गमें भक्ति और इस्लामकी कट्टरतामें सूफी वेदान्तका मेल कराया। वे तत्कालमें हुए। एक ओर उन्होंने सवर्णोंकी असमताका विनाश किया तो

दूसरी ओर मुसलमानोंके आगमने उपद्रव किया। जायमान जातियोंको प्रभावोंने धना दिया। जातीय अभावो पार तथा प्रभरी जीवन असमानित तथा शान्ति दलित तथा दमित किया। मुसलमान कवियोंने जहाँ सहज भावना और निर्मल रहस्यके लिए महान् उपासनीकरण प्रस्तुत किया। किन्तु सामन्तोंका होना वहाँ वश्ला? यह बढ़ता गया जाता था। अब गुरुओ और गुरुके माध्यमसे सामाजिक दलितोंका स्वार्थोंके बाध शुरू किया। परिवार वर्णाश्रम तथा पवायत इन तीनोका पौराणिकीकरण या मिश्रीकरण तथा आत्मीकरण हो गया। समाजके सार सम्बन्ध – प्रिय प्रिया पति पत्नी पिता माँ सखा स्वामी गुरु आदि – परमात्मामें लग गये। इस सम्बन्धके कारण ही ब्रह्म सगुण हो गया। अब वह मानव भी हो गया। अवतार इसकी व्याख्याके आरम्भकर्ता है। मायाके सत्त्व रज तम नामक गुण निराकार निर्विकार ब्रह्ममें निहित हो गये। फलस्वरूप भक्ति आदि ज्ञान रही और सगुण ब्रह्मको अवतार अनन्त जीवोंमें विचरनेके लिए अभावके लिए सृष्टि की सम्भव हुई। यही आत्मरति अवतार है। इस तरह लोकरंजन और लोकरक्षण स्वीकार हुआ – नय अर्थात् सांसारिक दुःखोंका प्रभाव भवबन्धन अपार प्रश्नमें रूपान्तरित हो गया और सामाजिक गठनका दास्य भावमें आत्मीकरण हो गयो। तो केन्द्र पसारी शक्ति लोकरक्षण सम्पन्न हुई और कल्पाभिमानी लोकरंजन सम्पन्न। लौर लोकानुमोदन सम्पन्न हो गया।

फलतः रामकृष्ण नवीयान परिवारको इकाईमें ग्राम इकाईका सार सम व्यवस्थाको सार बाना की। इन नवीयान परिवारके सङ्गठनके लिए व्यक्तिगत सम्बन्ध पोषित आदर्श लिए – विशेषरूपसे पिता-पुत्र और पति-पत्नीके आदर्श। यह इसकी अज्ञात थी। ग्रामीण स्वार्थोंके सङ्गठनके लिए इन्होंने इन आदर्श सम्मिलित परिवारको स्वाभाविक ही आदर्श वर्ण व्यवस्थाकी रचनाके लिए अभिमन्त्रित किया। इस तरह एक आदर्श ग्राम्य व्यवस्था और एक आदर्श परिवार गठनके सारा व्यान तत्कालीन समाजकी ऐसी धनाधिपत्य की जगह लोक मर्यादा एवं वर्णधर्म ही सर्वोपरि है। यह कवि भी कोई विकल्प नहीं दे सके। केवल ऐतिहासिक वास्तविकताका पौराणिक आदर्श उदासीकरण कर सके। इन्होंने रामको राजा पिता और स्वामी बनाकर उग्र सामन्तोंके दास तथा गोप दानोंका परिपोषण किया। इस तरह सामाजिक बन्धनकारी शक्ति परिवार और ग्रामकी वाह्य शक्तियोंको सांस्कृतिक और अनुशासनिक व्यवस्था मिला। यहाँ निम्न शील की प्रधानता रही।

दूसरी ओर कृष्णभक्त कवियोंने परिवारको स्वार्थसे आरम्भ करके

वयक्तिक सम्बन्धाकी ओर अभिसार किया। व ग्राम (सामाजिक इकाईके अर्थमें) की ओर उन्मुख नहीं ही हुए। इन्होंने परिवारके अन्दर एक आन्तरिक स्वायत्त (इण्टनल आँटनमी) को स्थापित किया। यह स्थापन काफी रोमण्टिक और भावकल्प मूलक रहा है। अत यहाँ लोकमर्यादा और वर्णमर्यादाका त्याग विषय है। प्राकृतिक अचलाका स्वच्छन्द जीवन, आभीर गोपोंकी निर्बन्ध चरवाही चर्याएँ तथा प्रेममें सभी कुण्ठाओंका परित्याग कृष्णवृत्तके प्रयोजन बने। नृत्य, भोग रास मिलन विरह प्रणयलीलाएं आदिके द्वारा कृष्णभक्तिने रागमूलक प्रेमको निर्बाधित मुक्ति देकर वयक्तिक मनस्तात्त्विक जीवनकी सक्षम प्रक्रियाको उदात्तीकृत किया। यहाँ परकीया प्रेम भी सहज हो गया अभिसार और सम्भोग क्रीडाएं हो गयीं। इस वृत्तके कवियोंने उनको प्रेमी पति सखा बनाकर उसे भोग और सौन्दर्य दानोंसे परिपूर्ण किया। इस तरह कृष्णाभिसारी भक्तिने परिवार और वयक्तिक जीवनको अन्दरूनी दुनियाको रोमण्टिक तथा भोगात्मक स्वच्छन्दता दी। यहाँ इन्द्रिय सौन्दर्य की प्रधानता रही।

अत इस कालमें रामवृत्त और कृष्णवृत्तका पुनश्च एक समानान्तर विकास तत्कालीन समाजके अन्तर्विरोधोंका ही प्रतिबिम्ब है। समाजने मुस्लिम फ्यूडलिज्मके द्वारा नाथों सिद्धों और मसलमानोंकी चुनौतियोंका प्रतिबाधन किया। सामन्तीय व्यवस्थाकी सीमाओंके कारण ये कवि किसी अन्य समाजका विकल्पन (आल्टर्नेटिव) तो नहीं दे सके किन्तु मर्यादा तथा उन्मुक्तिके बीच शील सम्बलित एक सन्तुलन कायम करनेमें काफी सफल हुए। अत रामभक्ति शाखाने ग्राम इकाइयों एव परिवार इकाइयोंको सगठित किया तो कृष्णभक्ति शाखाने परिवारके आन्तरिक सम्बन्धोंमें स्वच्छन्दता ला दी। भक्त होनेके कारण इन कवियोंने शूर-वीरोंके भक्ति शील-सौन्दर्यके चारित्रिक मूल्योंके आगे निश्चय विराम लगा दिया क्योंकि इनके नायक पुरुषोत्तम थे। समाजशास्त्रीय दृष्टिसे भक्ति शील सौन्दर्यके मूल्योंका रूपान्तर कई नये तथ्य उद्घाटित करता है। सौन्दर्यको लें। कृष्णभक्ति काव्यमें नारियाँ रूप लावण्य शोभा संयुक्त हैं जब कि रामभक्ति शाखामें पुरुष ही मनको लुभानेवाले हैं—सीता रामपर शूर्पणखा लक्ष्मणपर तारा बालिपर रीझती हैं। यहाँ नारियाँ देवियाँ हैं देवी सीताजी सेविकाएँ तथा सखियाँ। कृष्णभक्ति शाखामें नारियाँ अभिसारिका गोपियाँ कामचतुरा दूतियाँ हैं। रामभक्ति काव्यमें नैतिकताके प्रबल आग्रहके कारण नारीका पूर्ण सौन्दर्य चित्रण—विपरीत नख-शिख बारहमासा या षट्ऋतुके व्याजसे—लगभग नहीं हो पाया है (दीपशिखा सरस्वती आदिके रूपका छोड़कर)। किन्तु कृष्णभक्ति काव्यमें नारी-सौन्दर्य ही छाकर छलकता है और क्रमश मांसल एव

भोग प्रधान होता चला गया है। इसी क्रमसे कृष्णभक्ति काव्यमें परकीया प्रेम प्रधान है तो रामभक्ति काव्यमें स्वकीया प्रेम। कृष्णभक्ति काव्यमें कृष्ण अनेक युवतियों (गोपिकाओं) के साथ रमण करते हैं लेकिन रामभक्ति काव्यमें राम जरा-सा शृंगार गुणवाले अलौकिक पुरुष दिखाए गए हैं। कृष्णभक्ति काव्यमें राधाका गोपियोंका विरह बाढ़ बन गया है जबकि रामभक्ति काव्यमें उर्मिला विरह तथा सीता विरहका थोड़ा उल्लेख तक कहीं-कहीं मिलता है। नायकोंमें। कृष्ण पूर्णावतार तथा योगी भोगी पुरुष तथा विष्णु होकर भी पूर्णपुरुष तथा भगवान् हैं। भक्ति मार्गमें ये व्यावहारिक शृंगार वयके भी अतीत हैं। बालक होकर यशोदाके पास बाल्य होकर मनोभाव गाय और किशोर होनेपर गोपियों एवं राधाके साथ लीलाएँ करते हैं जो समाजकी मर्यादाओंको भंजक हैं। किन्तु बालक रामकी लीलाएँ बहुत कम ही पायी हैं (गीतावलीमें थोड़ा विस्तार है)। युवक होनेपर वे समाजकी मर्यादाके निमित्त तथा मर्यादा कायम करनेके लिए त्याग तथा तपस्याका जीवन अपना लेते हैं। वे पूर्ण पुरुष न होकर मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। बालकृष्ण तो यशोदा-नन्दके राग-रंगमें भी हैं लेकिन परवर्ती कृष्ण प्रणयलीलाओंमें लिप्त लीन हो जाते हैं। बाल राम प्रसन्नतापूर्वक अपना समय बिताते हैं किन्तु किशोर होते ही वे दानवों तथा दानवतासे जूझने लगते हैं। इसी तरह नारियोंमें राधा व गोपियाँ दुनियाँ और समाजके बंधन नहीं मानतीं। वे अभिसार, संयोग तथा रासके लिए आजाद हैं। किन्तु सीता, उर्मिला, कौशल्या आदि समाजके बंधनों तथा अत्याचारोंको सहती हैं और मर्यादाकी तपस्यामें निरंतर तपती हैं। इसी तरह शक्ति या गौरव रहे। कृष्णभक्ति काव्यकी प्रायः नारियाँ जीवनमें अधिक कृष्णकी मानी जानेवाली मात्र वियोगिनी रमणियाँ हैं किन्तु रामभक्ति काव्यकी नायिकाएँ पतिव्रता या वर्जित मर्यादी हैं। ये जीवन तथा समाजकी आलम्बनभारी सहती हैं। कृष्णभक्ति काव्यकी नारियाँ परकीयाएँ होकर भी बंधन तथा पीड़ाएँ नहीं सहतीं जब कि रामवृत्तकी नायिकाएँ स्वकीयाएँ होकर भी समाजके गलत दण्ड तथा पुरुष सन्देहपर आत्मबलि करती हैं। कृष्ण नायक हैं, बाल रूपमें वीर हैं। राम किशोर रूपके बाद वीर तथा नेता होते हैं। कृष्ण बाल रूपमें ही वर्षाके धमण्ड प्रतीक इन्द्रको चुनौती देते हैं किन्तु राम सभी देवताओंकी स्तुति करते हैं। कृष्णकी लीला किशोरावस्थाके बाद लगभग क्षीण हो जाती है जब कि रामकी विविध लीलाएँ उत्तरोत्तर अग्रसर होती हैं। राम गृहस्थ और एकपत्नीव्रत हैं जब कि कृष्ण गृहस्थ धर्मसे मुक्त तथा गोपीजन-वल्लभ हैं। राम अयोध्यासे जाकर लंका तकका दिग्विजय करते हैं जब कि कृष्ण गोकुलसे मथुरा

और गाकुलव हरवार ह (भक्तिपाट्टियमें)। इस भांति राम तथा कृष्ण चरित्राक माध्यमस सामाजिक परिणामाकी एक तुलनात्मक मीमांसा की जाती ह यद्यपि इसका स्वरूप केवल चरितशिल्पपर ही केंद्रित ह। पर हमारी सामाजिक दृष्टिस यह तथ्य भी ओझल नहीं होना चाहिए कि आलोच्य मध्यकालम भक्ति प्रधान चरणमें जो राम और कृष्णअवतारक रूपम वर्णित हुए ह महाभारत तथा रामायणक पूर्व इतिहास कालमें उनस विशिष्ट ऐतिहासिक आदर्श भी जुड ह और वहां व चरितनायक ह। कालकी लम्बी यात्रामें राष्ट्र अपन राष्ट्रीय आदर्शोंको मिथकीय चरित्राम विकसित करत ह और इस प्रकार सम्पूर्ण अतीतस रिश्ता जोड रखत ह। इसीलिए सामान्य मानवीय आदर्शोंक साथ विशिष्ट ऐतिहासिक आदर्श जुड जाया करत हैं। महाभारतक कृष्णका चरित्र बहुत व्यापक एवं विराट ह जो हमार आलोच्य कालमें आकर नितान्त एकांगी हो गया ह। पूर्व इतिहासकालक राम और कृष्ण राष्ट्रीय आदर्श ह। (रामभक्ति मूलक नहीं — क्योंकि यह चेतना राष्ट्रीय रामायणी परिणाम होता ह)। वाल्मीकि रामने देशकी उत्तर दक्षिण धुरीको एक किया ह। उन्होंन वानर, निषाद भाल कोल किरात राक्षस आदि जातियोंको आय सस्कृतिमें शामिल किया — पराजित करक या मित्रता करक। व निरंतर एक मर्यादास बंध रह और निरंतर मनुष्यस देवता बननकी कामना में रह। राम एक सुसस्कृत युवक देवता बनता हं। राम कठोर कर्तव्योंम बंध ह। राममें धनुर्वेदकी प्रधानता ह। लकिन द्वापर युग अथात महाभारत क नायक कृष्ण सम्पूर्ण और निश्छल मनुष्य ह। व निरन्तर देवताम मनुष्य बननेकी कामनामें ह। व चक्रधर गिरिधारी और मुरलीधर ह। उन्होंन देशकी पूर्व पश्चिम धुरीको एक किया ह। कृष्णको रामस यात्रा सरल और कूटनीति अपनानी पडी थी क्योंकि एक ही कुलवंशमें अपन ही कौरव पाण्डवोंक बीच न्याय अन्यायक पाट बट गय थ। अतएव कृष्णको राजनीति तथा कूटनीति दोनों का इस्तमाल करना पडा। पांचालों और पाण्डवोंकी सधि कराकर उन्होंन कुरुपांचाल धुरी कायम की, और राजगिरिका अन्यायी मगध धुरीका विनष्ट कर दिया। कृष्ण-प्रभाव नायक द्वारिका हिमालय मणिपुर उपमी आदिक छोर तक पहुचते ह। कृष्णक युगमें प्रखरता कूटनीति सधि विग्रह और बौद्धिकताकी वाल्यात्रा था। महाभारतक नायक कृष्ण ह और नायिका सावली द्रौपदी। द्रौपदी राजकन्याकी नतिकता पतियोंक सत्त्व स्वामित्व तथा वशीवृत्ताको प्रखर चुनौती देती ह। इस तरह राम और कृष्ण भारतीय मिथकीय चरित्र तथा ऐतिहासिक आदर्श रह ह जिनक चरित्रोंकी व्याख्या प्रत्यक युगन अपनी विचार

धारा मे चलनेवाली पुराणोंका था है। मुसलिम मध्यकालमें भविष्यपुराण मध्यम रामभक्त तथा कृष्णभक्तों जो स्वच्छ उभरा उसके विषय हम रामचरित ही पुष्ट है। उस वातावरण पद्मपुराण ब्रह्मवैवर्त तथा परिवारकी पौराणिक संरचनाने सारा ग्राम व्यवस्था — तथा उनके सारा जम्बूद्वीप चतुर्युगी समाज — को नये आदर्श प्रदान करनेकी धार्मिक दृष्टिका पुकार मच रही थी। ये पुकार सार युगकी थी। अन भविष्य साहित्य धर्मयुग तथा रामकी मुग्धम दोना हुआ।

यहाँ एक नया सवाल उठता है कि मध्यकालमें भक्ति परम्परा आदर्श समाज और जीवनकी प्रेरणा रचनाका कौन-सा युग था? क्या यह केवल कल्पना थी या इस अनुशासित करनेवाली कोई ऐतिहासिक सस्मरण था जो कालान्तरमें इतिहास व्यापक विस्मृत होनेपर ऐतिहासिक आदर्श मान रहा गया? हमारे अनुसार यह आदर्श समाज और जीवन शुङ्ग और गुप्तोंका काल था। पुष्यमित्र शुङ्ग एक ब्राह्मण सम्राट था। उसने मानव धर्मशास्त्रका प्रणयन कराकर ब्राह्मणों को पुनः भू-सुर के पदपर प्रतिष्ठित किया वर्णव्यवस्थाको पुनः प्रतिष्ठा करके यज्ञादिको पुनरुज्जीवित किया संस्कृतको राजभाषा पद पुनः अर्पित किया और आक्रान्ता ग्रीक तथा यवनोंको पराजित किया। इसी भाँति गुप्त साम्राज्यमें ब्राह्मण सिद्धान्तोंके आधारपर एक आदर्श राज्य रचनेकी चेष्टाएँ हुई। समुद्रगुप्तने दिग्विजय की अश्वमेध यज्ञ किये और गणतन्त्रोंको समाप्त करके एकच्छत्र राज्य कायम किया। समुद्रगुप्त असुरविजयी थे। उन्होंने धर्मविजयी चरित्र प्राप्त किया तथा गौरूपी पृथ्वीका उद्धार किया। उन्होंने क्षत्रिय और ब्राह्मणके सम्बन्धोंको सुदृढ़ करके कोसल (अयोध्या) पर धर्मध्वजा फहरायी। वे वर्णाश्रम रक्षक थे और मनके आदर्शोंके अनुकूल धर्ममय रघुवंश संचालक थे। किन्तु गुप्तोंने गणोंका समाप्त करके और समाजको द्विज क्षत्रिय तथा शूद्रोंकी स्थायी धुरीमें बाँटकर एक सामन्तीय अपतन्त्रकी उत्पीड़क नींव भी डाली। फिर भी, समग्र रूपमें गुप्त साम्राज्य तथा समुद्रगुप्तकी दिग्विजय राष्ट्रके लिए वास्तविक जीवन तथा आदर्श जीवनका मिलन बिन्दु हो गया। कालान्तरमें ये दोनों ऐतिहासिक तथ्य क्रमशः आदर्श निजंधर [लाजण्ड] और पुराण होते चले गये। यहाँ तक कि कालिदासने रघुवंशमें जो दिग्विजय वर्णन और यज्ञ वर्णन किया है वह प्रचुर रूपसे समुद्रगुप्तकी दिग्विजयका रूपायन है। तुलसीने जिस आदर्श समाज राज्य और सम्राटकी कल्पना की है वह शुङ्गों और गुप्तोंके युगसे परम्परा रूपमें अनुप्राणित है। तुलसीने ब्राह्मणोंको भू-सुर कहा है पृथ्वी गौके उद्धार के हेतु अवतारकी चर्चा की है श्रीरामको असुरविजयी बताया है तथा रामके

धर्ममय रथका रूपक (लंकाकाण्ड) मनुके आदर्शोंके अनुरूप दिया है। उन्होंने वर्णाश्रम धर्मकी रक्षा और प्रतिष्ठाका सर्वोच्च लक्ष्य प्रतिपादित किया है तथा द्विज, क्षत्रिय और शूद्र असमानतामय धर्मकी भी वकालत की है। इस भांति तुलसीके लोकमंगलके आदर्शोंके सात झिलमिला उठते हैं। लेकिन रावण और रावण पक्षकी रचना कैसे हुई? पहले स्रोत तो पौराणिक असुर और दानव हैं ही। दूसरे स्रोतके रूपमें पूर्ववर्ती मुसलमान हमलावरोंको बतलाते हैं। अफगान शासकोंकी निरंकुश लूटपाट, हिंसा, मन्दिरोंके विध्वंस बन्दियोंके कत्लेआम, जलते हुए शहरों और गाँवोंके खण्डहरों तथा भुखमरी अकाल और धार्मिक अत्याचारोंने भारतीय समाज और हिन्दू संस्कृतिको रौंद डाला था। लोक चित्तमें वे बर्बरता और म्लेच्छाचार रूपमें भयपूर्वक प्रतिष्ठित हो चुके थे। इनके काफी बाद तुलसीका जीवन अकबर (वे अकबरसे दस वर्ष बड़े थे) जहांगीरके शासनकालमें गुजरा। यह आरम्भिक मुगल युग शाहंशाह अकबर महानके आदर्शोंमें इक्कर द्वितीय भारतीय रिनेसाँ (गंगाके स्वर्णयुगके बाद) होकर पल्लवित-पुष्पित हुआ। स्वयं अकबरने समुद्र गुप्तके पौत्र विक्रमादित्यकी तरह नौ श्रेष्ठ मन्त्रियोंका नवरत्न मण्डल बनाया था। उन्होंने हिन्दू मुसलमान संस्कृतिके मेलसे हिन्दुस्तानी संस्कृतिकी सुदृढ़ नींव डाली। इस्लाम और सूफी और इसाई मतोंके मेलसे दीन इलाही चलाया धर्म समानतापर भूमि सुधार लागू किये, जजिया कर हटाया, हिन्दू राजकुमारियोंसे विवाह किया, अपने दरबारमें गंग, पहवर, बीरबल, रहीम जैसे कवियोंको सम्मान दिया, रामायण तथा महाभारतके फ़ारसी अनुवाद कराये इत्यादि। इस भाँति भारतमें हर्षवर्धनके बाद पुनः एक उदार और सुदृढ़ सम्राट तथा साम्राज्य अभ्युदित हुआ। अकबरके शासनमें लूटपाट और धार्मिक अत्याचार लगभग बन्द हो गये और किसानोंको अपनी उपजका दो तिहाई भाग रखनेका अधिकार मिला। फलतः भारतमें शताब्दियोंकी गरीबी और अत्याचारोंसे थोड़ी राहत मिली। उदारताके इसी वातावरणमें तुलसीदासका जीवनकाल स्थित है। इसी लिए तुलसीदासमें आशावादकी प्रधानता है। एक कट्टर ब्राह्मण होनेके नाते वे मुसलमानों तथा शूद्रों औरतोंके प्रति उदार नहीं हो सके। लेकिन उनके राक्षस और असुर तथा उनके कार्य बहुधा पूर्ववर्ती आक्रान्ताओंके प्रतिबिम्बित रूप हैं। उस युगमें युद्धके चार आतंक थे — आग, अकाल, मौत, लूटपाट। थोड़ा आश्चर्य इस बातपर अवश्य होता है कि लोकभाषाओंके सूर और तुलसी जैसे महान कवियोंने भी मिरजों और अफगानोंके हमलोंकी कहीं भी प्रत्यक्ष चर्चा नहीं की। असुरोंकी माया तथा विध्वंस लीलाके रूपमें ये ऐतिहासिक संस्मरण भी अद्भुत

और मिथकीय बना दिये गये हैं। इस तरह हम रामराज्य और रावणके मध्यनाम कथाको सभी स्तरोंका मध्यकालीन पौराणिकीकरणका पहला सशक्त तत्त्व मानते हैं। इसके अलावा उनका अपना समाज (ग्राम-इकाई) अपना राज्य अपना परिवार और अपना जीवन जो प्रतिमान पेश किये हैं वे नानापुराण-निगमागम-सम्मत हैं। मध्यकालीन पौराणिकीकरणका यह दूसरा प्रधान तत्त्व है। मध्यकालीन पौराणिकीकरणका तीसरा प्रकार है मिथकीय कालका बोध। तुलसीदास अपने समयके समय तथा समाजको भविष्यका एवं अतीत एक त्रिधर्मी (त्रिआयामी) अवधारणाकी अनुभूति करते हुए आगे बढ़ते हुए सांस्कृतिक चक्रकी उद्भावना की। यह चक्र प्रत्येक कल्प, युग और मन्वन्तरमें चलता है (जिस तरह सम्वत्सर)। इस भाँति अतीत-वर्तमान भविष्य तीनों कालके आधारको तुलसी एकनिष्ठ सनातन था पुनः एक पूरक मिथकीय सनातन हो गये। इसके बड़े परिणाम निकले जिन्होंने नाना घटना और कथा शिल्प दोनोंको प्रभावित किया। उदाहरणके लिए ऐसा कि राम कालका प्रथम युग है स्वर्णयुग या सत्ययुगमें पल्लवित हुआ और इस प्रकार कल्पमें देवताओं ऋषियोंकी लीला बार-बार प्रकट हुई है। इसके फलस्वरूप उनके पूर्व जन्म और अगले जन्मका वर्तमान जन्मसे संबंध जोड़ दिया गया। पूर्व युगके पात्र अगले युगमें या भविष्यत् पात्र पिछले युगमें उपस्थित हो जाते हैं। उदाहरणके लिए षष्ठावतार परशुराम और परवर्ती अवतार श्रीराम आगम और उनके परवर्ती गायक ऋषि वाल्मीकि राम और उनके परवर्ती व्यास तापस तुलसी एक ही समयमें उपस्थित हो जाते हैं। ऐसे अन्य कई आध्यात्मिक विश्वास कला-शिल्पको भी निर्देशित करते हैं जैसे प्रत्येक कल्पमें रामरूप हरिका अवतार होता है और काकभुशुण्डि नारद या मुनि लोग उसका गायन करते हैं। शिव रामजन्मोत्सवमें शामिल होते हैं (मानस १।१९५।२) राम बारातमें आते हैं (मानस १।३१४।१) राम रावण युद्ध देखते हैं (मानस ६।८०।१) तथा रामका तिलक देखने आते हैं (मानस ६।११५) विजयी रामको देखने स्वर्गगत दशरथ आते हैं (मानस, ६।११२।१) नारद बराबर अयोध्या आया करते थे और वहाँ रामके नये-नये चरित्र देखकर ब्रह्मलोकमें गाया करते थे। नारद युद्धमें रामको नागपाशसे मुक्त करनेके लिए विष्णु-वाहन गरुड़को लंका भेजते हैं (मानस ६।७३।५) नारद विष्णुको शाप देते हैं कि वे नर रूप होकर वानरों के साथ विरहका दुःख भोगें। शची, सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती (जो अभी अभी राम-कथा सुन रही थीं) कपटपूर्वक स्त्री-वेश बनाकर रनिवासमें दूलह रामका दर्शन जा मिलती हैं (मानस १।३१७।३-४)। इसी तरह परवर्ती युग

भी मिथकीय हैं जैसे, आज भी (तुलसीके समयमें) विभीषण अपने समाजसहित लंकाके राज्यपर आसीन हैं (दोहावली १६४) रामके दिव्य दरबारमें हनुमान और भरतके कहनेपर लक्ष्मण रामको सेवामें तुलसीदासका विनय पत्रिका अर्थात अर्जी पेश करते हैं और रघुनाथ तुलसीकी सच्ची सेवाके फलस्वरूप उसपर सही कर देते हैं (विनयपत्रिका २७९) वनवासी रामको वाल्मीकि अपने आश्रममें ले आते हैं (मानस २।१२४)। इस चेतनामें काल प्रवाहकी इकाई बहुत विराट होती है। शिव सत्तासी हजार वर्ष बीतनेपर अपनी समाधि खोलते हैं (मानस १।४७।८) तपस्विनी पार्वतीने एक हजार वर्षो तक मूल और फल खाये तथा तीन हजार वर्षो तक सूखे बेलपत्र खाये (मानस १।७३।१ २)। मिथकीय कालका दूसरा नतीजा यह हुआ कि अपराध और दण्ड, पुण्य और पुरस्कारका विधान पूर्व वर्तमान पश्चात तीनों जन्मोंमें प्रतिफलित होने लगा। पूर्व जन्मके शाप पाये हुए पात्र इस जन्ममें राक्षस पाषाणशिला सम्पाती, काकभुशुण्डि आदि बनते हैं तथा राम-द्वारा उद्धारित होते हैं। पूर्वजन्मके पुण्योंके फलस्वरूप पात्र इस जन्मको भोगते हैं। इसी आध्यात्मिक न्यायसे अगले जन्मका निर्णय भी होते हैं। इसी प्रवृत्तिका चरमोत्कर्ष रूप अवतारवाद है। स्वयं हरि पूर्ण, अंश, कला, विभूति, आवेश, लीला, युगल तथा रस इन नौ रूपोंमें अवतार लेते हैं। मिथकीय कालका तीसरा परिणाम यह निकला कि तथ्यात्मक ऐतिहासिक चेतन की उपेक्षा हुई। तुलसी इतिहाससे मिथककी ओर तथा मिथकसे लोकतात्त्विक इतिहासकी ओर आते जाते रहे। रामके विवाहमें वैदिक तथा लौकिक (अर्थात मध्यकालीन) दोनों रीतियोंका किया जाना (मानस १।३२०।१) वनवासी रामका अवध राज्यके गाँवों तथा पुरवोंके बीचसे गुजरना (मानस २।११२।१) वनवासी रामको देखने अल्पवयस तापस तुलसीका आना आदि मिथकसे लोकतात्त्विक इतिहासकी ओर प्रयाणके दृष्टान्त हैं। इसी भाँति शिव-द्वारा मानस की रचना करना (मानस १।३३।५) तीर्थराज प्रयागका तत्कालीन चित्रण करते-करते तुलसी-द्वारा वहाँ याज्ञवल्क्य एवं भरद्वाजका बखान कर देना (मानस १।४४।१) चित्रकूटके भरतकूपके बाबत फैली लोककथाके आधारपर मानस के भरतको उससे सम्बद्ध कर देना (मानस २।३०९।१–८) आदि लोककथाओंसे मिथककी ओर प्रयाणके दृष्टान्त हैं। मिथकीय कालकी चेतनामें युक्त इतिहास-लेखनकी विधा कैसी हो जाती है इसके अनूठे नमूने तुलसीने पेश किये हैं। पहले तो मिथकीय चेतनावाला इतिहास लेखक हमेशा रूपक और अन्यापदेश (एलिगॅरी) के द्वारा अपनी भावना व्यक्त करता है दूसरे वह स्वयंको लेखक न मानकर किसी देवता की प्रेरणा गुरु

कथाको यह रूप दे देता है। तीसरे वह तमाम घटनाओंको सामाजिक शक्तियोंका परिणाम न मानकर यमराज भोग मानता है। भोग का साथ स्थान। आश्रम नदी-तट आदि पर हो उसकी रचना है। चौथे यह ऐतिहासिक तथ्योंकी बजाय पौराणिक गल्प पेश करता है और अन्तत उसका काल विभाजन युगोंके आधारपर हुआ करता है। सत युगसे लेकर कलियुग तक अवश्य सारा नगर या कल्पित हाकर रूप हो जाता है (मानस शिव पार्वती कथा गीतावली) और जब वे तीनों आश्रम आदिका वर्णन करते हैं तब वे पहुँचे हो जाते हैं। गीतावली में चित्रकूट वर्णन करते समय (४३-५२) उसका प्राकृतिक सुन्दरताके अधिक प्राकृतिक पावनता आदि मन्दिर तथा स्वयं राम सीता लक्ष्मणके निवास पवित्र मन्दाकिनीका माहात्म्य गाया है। सारी प्रकृति मानो आध्यात्मीकरण हो गया और इन अलौकिक पात्र उनकी मनःक्रम उसको शोभा भिन्न भिन्न अधिकाधिक अधिकाधिक जाती है। यह सारा वर्णन स्वर्गकी शोभा आरम्भ किया हुआ है। इसके समानान्तर कवितावली का काशी वर्णन है जहाँ प्रकृति गायब नहीं है (१६९-१८३)। कवितावली काशी काशी ब्रह्माकी रची हुई विष्णुकी बसायी हुई और शंकरकी निवास भूमि है। यहाँ पराजित हो राजा भी रहते हैं (ज गिर नहीं)। यहाँ देवता देवी देवनदी गंगा सिद्ध और मुनि रहते हैं (तत्कालीन समाज चित्रण) यहाँ रनवास पुरुष नगर और स्त्रियाँ पालती हैं तथापि यहाँ ऐसा कहा है। काशीमें महादेव जन ठाकुर उमा रानी ठकुरानी हैं गणेश गण योद्धा हैं कारण भैरव कोतवाल हैं भैरव दण्डाधीन हैं गणेश जन सभासद हैं अर्थात वास्तविक राजा रानी सूबेदार कोतवाल मीरमुंशी मनसबदारकी कोई सत्ता-महत्ता नहीं है। आज काशीरूपी कल्पलताको कलियुग किरात काट रहा है। महामारी फैली है। क्यों ? शंकरकी गद्दीकी वजहसे नहीं बल्कि उन लोगोंके पापके कारण जिन्होंने राजाओं तथा ब्राह्मणोंको मारकर और बाकि कुमार्गोंसे धन इकट्ठा किया है। सम्पूर्ण काशी वर्णन रूपकोंसे जटिल है। इन उदाहरणोंके विश्लेषणसे हम मानस आदिके ऐतिहासिक तथा मिथकीय विभाजनके गूढ़ रहस्य पा सकेंगे। मिथकीय कालकी चेतनाका चौथा परिणाम यह हुआ कि देवता प्रकृति पशु पक्षी मानव राक्षस अधमानव आदि सभी एक कार्यके अंग हो गये सभीपर एक ही प्रकारका नैतिक और धार्मिक विधान लागू हुआ सभी मानवोंकी भाषा भावनावाले हो गये और सभीको उनके सुकर्मों-कुकर्मोंका फल उनकी भावनाओंका समाधान उनके कार्यके कारणोंका अभिज्ञान तुरन्त मिल गया क्योंकि मिथकीय जगतमें तीनों लोक तथा तीनों काल तथा तीनों प्राणी